LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 12: भक्तियोग

2/2 (श्लोक 12-20), शनिवार, 22 जून 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/dia-oi-s_rA

भक्त के गुण

प्रार्थना, दीप प्रज्वलन और गुरु वन्दना से आज का विवेचन सत्र प्रारम्भ हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता में सात सौ श्लोक हैं, जिनमें से धृतराष्ट्र ने एक, सञ्जय ने इकतालीस, अर्जुन ने चौरासी व भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से पाँच सौ चौहत्तर श्लोक कहे गए हैं। श्रीगीता जी के अध्ययन मात्र से ही जीवन में प्रकाश आ जाता है। श्लोक का अर्थ न जानते हुए भी अगर इसका उच्चारण मात्र ही किया जाए तो भी व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। उनका प्रभाव व्यक्ति के पूरे स्वभाव को बदल देता है।
जैसा कि गुरुजी कहते हैं कि ब्रेन की प्रोग्रामिङ्ग ही बदल जाती है। केवल उच्चारण मात्र ही जीवन के प्रवाह को बदल देता है। भौतिक विज्ञान का आना जरूरी नहीं है। अगर आप एक बल्ब जलाना चाहते हो, केवल स्विच ऑन करने से ही रोशनी हो जाती है। उस बल्ब के पूरे मेकैनिज्म को समझना आवश्यक नहीं है। इसी तरह से गीता जी का अध्ययन करने मात्र से ही जीवन में परिवर्तन आना शुरू हो जाता है।

द्वादश अध्याय भक्तियोग पर आधारित है। इस कारण से इसका महत्त्व और बढ़ जाता है। इसमें श्रीकृष्ण ने भक्त कैसा होना चाहिए? उसमें कौन से गुण होने चाहिए? इसके बारे में बताया है। श्रीगीता जी के संवाद के द्वारा, जिसमें मार्ग ज्यादा आवश्यक नहीं माना गया, अपितु उस मार्ग से क्या प्राप्त किया? यह ज्यादा आवश्यक माना गया है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के निमित्त पूरे विश्व के लिए व मनुष्य जाति के लिए भक्त के गुणों के बारे में बताते हैं। ध्यान, माला, जप, भजन, कीर्तन, स्मरण यह सब तो मार्ग हैं। भगवान कहते हैं कि इनसे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता लेकिन इन मार्गों से तुमने क्या पाया? वह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

12.12

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्, ज्ञानाद्ध्यानं(वँ) विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्याग:(स्),त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥12.12॥

अभ्यास से शास्त्रज्ञान श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है (और) ध्यान से (भी) सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग (श्रेष्ठ है)। क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

विवेचन - अभ्यास से श्रेष्ठ ज्ञान है, ज्ञान से श्रेष्ठ ध्यान है और ध्यान से श्रेष्ठ कर्म फलों का त्याग है। ऐसे त्याग से शीघ्र मन को शान्ति प्राप्त होती है। अगर हम इसको परमात्मा की दृष्टि से देखने की कोशिश करें तो श्रीकृष्ण कहते हैं, अभ्यास इन्द्रियों पर आधारित होता है और इन्द्रियाँ हमारे मन को नियन्त्रित करती हैं। हम सूक्ष्मता से देखने का प्रयास करें तो यह केवल इन्द्रियों पर आधारित अभ्यास है जिससे केवल हमारा मन नियन्त्रण में रहता है। यह एक आरम्भिक क्रिया है। जप करना, तप करना, माला जपना, कीर्तन करना यह सब क्रियाएँ हमारे शरीर से व इन्द्रियों से जुड़ी हैं। क्या वास्तव में यह एक स्थूल शरीर है? जब हम पाँच वर्ष के थे, तब हमारी तस्वीर कुछ और थी। पन्द्रहवें वर्ष में हमारा कुछ और तरह का शरीर था। पच्चीस में कुछ और तरह का, पैन्तीस में कुछ और। पचपन और पिच्यासी तक कुछ और तरह का हो जाता है। बचपन की तस्वीर भी देखें तो हम स्वयं को पहचान नहीं सकते। अगर किसी वार्षिकोत्सव वाले दिन कक्षा की फोटो में अपने आप को पहचानने की कोशिश करें तो ध्यान से ढूँढना पड़ेगा कि हम स्वयं कहाँ हैं? हम वैसे नहीं रहते, जैसे हम बचपन में थे तो फिर क्या बदला? शरीर, समय के साथ-साथ शरीर बदल गया। क्या उसी शरीर में रहने वाले हम बदल गए? क्या हमारा मन बदल गया? खिलौने की इच्छा करने वाला मन धीरे-धीरे कई और तरह की इच्छाओं में लीन हो जाता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ हमारी इच्छाएँ बदल जाती हैं। हमारा मन बदल जाता है। हमारा ध्यान पत्नी, बच्चे, घर, साधन व स्वस्थ शरीर इन सब में लग जाता है और बुढ़ापा आते-आते हम केवल स्वस्थ शरीर की ही कामना करते हैं।

इसका अर्थ है, शरीर के तीन भाग है-

स्थूल शरीर जो हमें नजर आता है।
सूक्ष्म शरीर जो हमारा अन्त:करण है।
और कारण शरीर।

अन्तःकरण का हम कभी टेस्ट करना चाहें तो उसे नहीं किया जा सकता। कोई भी डॉक्टर नाड़ी पकड़कर आपके अन्तःकरण में क्या चल रहा है नहीं बता सकता। इसकी भौतिक जाँच नहीं हो सकती। यह जितना ज्यादा सूक्ष्म है, उतना अधिक शक्तिशाली है। जितना माइक्रो है उतना ज्यादा शक्तिशाली है। जो लोग वैज्ञानिक भाषा समझते हैं, वे यह जानते हैं कि नैनोमीटर के नाक में प्रोसेसर जितना छोटा होता जाता है, उतना ज्यादा शक्तिशाली होता जाता है। वैसे ही अन्तःकरण है। शरीर स्थूल है तो पावरफुल है लेकिन अन्तःकरण जितना सूक्ष्म होगा उतना ज्यादा पावरफुल होगा।

अन्तःकरण के चार भाग होते हैं-

मन, बुद्धि, चित्त व अहम्।

जब यह सोच रहे होते हैं कि निर्णय करें कि न करें? यह काम का सङ्कल्प लें या विकल्प लें? तब हम मन की स्थिति में होते हैं। जब हम निर्णय की स्थिति में पहुँच जाते हैं तो वह बुद्धि है। जब हम धारणा करते हैं, मैं वैज्ञानिक हूँ, मैं बहुत बड़ा नेता हूँ, व्यवसायी हूँ, प्रतिक्रिया देते हैं तो हम अपने चरित्र को परिलक्षित करते हैं। जब हम सोए होते हैं, बहुत गहरी नींद सोते हैं और सुबह उठकर हम कहते हैं रात तो मैं बहुत गहरी नींद से सोया इसका मतलब है, हम तो सो रहे थे, फिर कौन जाग रहा था? वह सूक्ष्म है। हमारे अन्दर एक अहम् है, जब हम सो रहे होते हैं, बीमार हैं या कहीं भी कोमा में भी हैं तो भी वह हमारा सूक्ष्म हमारे अन्दर जाग रहा होता है। जब हम सोते हैं तो हम चेतन अवस्था में नहीं रहते प्रलय में चले जाते हैं। वहाँ का देखा हुआ स्वप्न भी हमें उठने पर जैसे सच्चा सा लगता है। हम जो जागने पर हैं, हम वही हैं, स्वप्न वाले हम नहीं हैं। यह Ego वाला भाव, हम, हमारा, अपना, आप, स्वत्व, हमारे अस्तित्व का सूक्ष्म भाग ही हमारा अहम् है।

अभ्यास इन्द्रियों से होता है और यह मन को काबू करता है। ज्ञान से बुद्धि काबू होती है, ध्यान से चित्त काबू होता है, लेकिन हमारा अन्तःकरण प्रसन्न होता है, हमारे त्याग से। मेरा बेटा, मेरी पत्नी, मेरा कारोबार, मेरा मोबाइल, मेरा घर, मेरी गाड़ी, यह हमारे अहङ्कार को जन्म देते हैं। कर्मों के फल का त्याग करना श्रेष्ठतम त्याग है।

भक्तियोग अध्याय के माध्यम से श्रीकृष्ण ने भक्त के उन्तालीस गुण कहे हैं।

12.13

अद्वेष्टा सर्वभूतानां(म्), मैत्रः(ख्) करुण एव च|
निर्ममो निरहङ्कारः(स्), समदुःखसुखः क्षमी||13||

सब प्राणियों में द्वेषभाव से रहित और मित्र भाव वाला (तथा) दयालु भी (और) ममता रहित, अहंकार रहित, सुख दुःख की प्राप्ति में सम, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट, योगी, शरीर को वश में किये हुए, दृढ़ निश्चयवाला, मुझ में अर्पित मन बुद्धि वाला जो मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है। (12.13-12.14)

विवेचन - भक्तियोग अध्याय के माध्यम से श्रीकृष्ण ने भक्त के उन्तालीस गुण कहे हैं। यह बताने के पश्चात कि उनके साकार रूप की भक्ति श्रेष्ठ है, तेरहवें से उन्नीसवें श्लोक तक भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय भक्तों की विशेषताओं का वर्णन किया है।

अद्वेष्ट अर्थात सभी जीवों के प्रति द्वेष भावना से मुक्त।

सभी प्राणियों के प्रति द्वेष न रखने को, श्रीकृष्ण भक्ति का पहला गुण बतलाते हैं।

I do not dislike anyone

जीजस क्राइस्ट का ही उदाहरण लें। अपने अन्तिम समय में जो व्यक्ति उनके हाथों व पैरों में कील ठोक रहा था, उस के लिए उन्होंने कहा-

"हे प्रभु इसे क्षमा कर देना, इसे नहीं पता यह क्या कर रहा है?"

ऐसा कहना द्वेष न रखना है। जो व्यक्ति उनको ही हानि पहुँचा रहा है, उसके लिए भी उनके मन में हानि पहुँचाने का भाव नहीं है। द्वेष केवल हानि पहुँचाने वाले व्यक्ति के लिए नहीं, अपितु प्रगति से द्वेष करना, किसी भी व्यक्ति के सुन्दर, पढ़े-लिखे, अच्छे वर, अच्छी पत्नी, अच्छे साथ, किसी की आलोचना में मजा लेना, दूसरे की लाइन को छोटा करना, अपनी उन्नति की तरफ न जाना, किसी की प्रशंसा सुनकर चिढ़ जाना, **यह सब भी द्वेष है।**

यह भावना केवल परिवारों में ही नहीं होती, देवरानी-जेठानी में ही नहीं होती, कि सास एक की तारीफ करती है तो दूसरी चिढ़ गयी। द्वेषता सङ्घ और संस्थानों में भी होती है। द्वेष की भावना अवनति की ओर ले जाती है। द्वेष के कारण एक दूसरे को देखकर रास्ता ही बदल लेना, उसकी ओर ध्यान ही न देना, यह द्वेष के लक्षण हैं।

एक अच्छे भक्त का लक्षण है कि वह किसी से भी द्वेष नहीं करता। ऐसे भक्त अपना अहित करने वाले लोगों के प्रति भी द्वेष भावना से मुक्त रहते हैं।

मैत्रीपूर्ण और करूणा भाव

भक्त सबसे मैत्री करता है, सब के मङ्गल की कामना करता है, किसी के भी अमङ्गल से खुश नहीं होता है।

रूठे सुजन मनाइए, जो रूठे सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार।।

यहाँ सुजन तीन प्रकार के लोगों के लिए कहा गया है। पहला स्वजन, अपने परिवार के सदस्य, दूसरा सज्जन, अच्छे लोग और तीसरा हितैषी।

रहीम जी कहते हैं कि जब भी कोई हमारा अपना प्रियजन हमसे रूठ जाए तो उसे मना लेना चाहिए, भले ही हमें उसे सौ बार

ही क्यों न मनाना पड़े। प्रियजन को अवश्य ही मना लेना चाहिए।

पतञ्जलि मुनि ने कहा है, सुखिया से मैत्री, दुःखियों से करुणा, पुण्य आत्माओं से मुदितता और पाप आत्माओं से उपेक्षा करनी चाहिए। जबकि बुद्धियोग में इसको दो भाग में बाँट दिया गया है। सुखी व पुण्यत्माओं से मैत्री और दुःखी व पापात्माओं से करुणा करनी चाहिए।

भक्त सभी जीवों में दया भाव रखता है। इस प्रकार से दूसरों को अपने से भिन्न देखने की धारणा समाप्त हो जाती है। यह भावना भक्तों में दूसरों के कष्टों के प्रति सहानुभूति विकसित करने की ओर ले जाती है।

समस्त संसार के कल्याण के लिए पहाड़ों पर बैठे हुए सन्त महात्मा तपस्या करते हैं। उनके मन में समस्त संसार के लिए करुणा है इसलिए वे सबके कल्याण की कामना करते हैं।

स्वामित्व व अहङ्कार विहीन

अहम् भावना स्वामित्व के भाव को जन्म देती हैं। भक्त का सबसे बड़ा शत्रु अहम् भाव है। अपने भीतर के अहम् भाव को मिटाने का अभ्यास करके ही कोई आध्यात्मिक मार्ग पर उन्नति कर सकता है। मेरा घर, मेरी गाड़ी, मेरा परिवार, मेरा कारोबार यह सब स्वामित्व को जन्म देती है।

गर्मी के दिन थे। पति पत्नी बाजार में फ्रिज खरीदने के लिए गए। कई तरह के साइज और मॉडल देखने के बाद उन्होंने एक फ्रिज लेने का निर्णय किया। सेल्समैन ने यह जानकर कि उनका निर्णय हो चुका है उसके ऊपर टैग लगाकर उसकी बिलिङ्ग की कार्यवाही शुरू कर दी। जैसे ही उसने फ्रिज पर मिस्टर एण्ड मिसेज गुप्ता लिखा तो उस व्यक्ति के अन्दर स्वामित्व का भाव आ गया। दूर से आते हुए दूसरे सेल्समैन व मजदूर जो फ्रिज उठा कर ले आ रहे थे, उनके आगे खड़ा हो गया कि मेरे फ्रिज पर स्क्रैच न लग जाए। इसको थोड़ा दूर से लेकर जाओ। जब तक वह टैग नहीं लगा था, स्वामित्व का भाव नहीं था और जैसे ही स्वामित्व का भाव आया तो उसके साथ-साथ करुणा का भाव चला गया।

मेरा मोबाइल, मेरा घर, मेरी गाड़ी यह सब स्वामित्व के भाव हैं। यदि हम कहें कि ठाकुर जी का है, उन्हीं का दिया है, तो यह भाव नहीं आता। सुख-दुःख की क्षमता ईश्वर द्वारा प्रदान होती है और अगर ठाकुर जी ने दिया है और ठाकुर जी ने ही वापस लिया तो फिर उसे चीज़ के आने और जाने का दुःख नहीं होता। भक्त अहम् भावना तथा अपने व्यक्तित्त्व से स्वामित्व के भाव को त्याग देते हैं और उसी प्रकार से शरीर के रूप में अपनी मिथ्या पहचान का त्याग कर देते हैं।

सुख दुःख में सम

भक्त की विशेषता होती है कि वह सुख में बहुत ज्यादा प्रसन्न नहीं होता और दुःख में बहुत ज्यादा दुःखी नहीं होता। सुख और दुःख की इस क्षमता को भक्ति का लक्षण माना जाता है। बहुत ज्यादा खुशी होने पर व्हाट्सएप स्टेटस डालना, फेसबुक का स्टेटस डालना और फिर किसी भी तरह की परेशानी में आँसू आना, यह सम न होने के लक्षण हैं। यह नहीं है कि दुःख और सुख महसूस नहीं होना होता बल्कि उसकी तीव्रता का कम होना बहुत आवश्यक है। भक्त सुख और दुःख को महसूस तो करता है, पर महसूस करने की गहराई कम होती है।

कई लोग सालों साल पहले की किसी भी हानि को याद रखते हैं। इतने साल अपने मन में उस हानि को याद कर दुःखी होते रहते हैं।

जैसे कोई व्यक्ति पाँच साल पहले सिलेण्डर चोरी हो जाने की कथा बैठकर सुनाते रहें, तो इसका मतलब वह कहानी से नहीं उबरा। उसी को याद करके दुःखी हो रहा है। यह भक्त के लक्षण नहीं हैं। भक्त का लक्षण है कि वह लेट इट गो में विश्वास करता है।

भक्त यह विश्वास करते हैं कि केवल प्रयास करना ही उनके हाथ में है। फल प्रदान करना भगवान के हाथ में होता है। इस प्रकार अपने कर्मों के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम को वे भगवान की इच्छा समझते हैं। उन्हें समभाव से स्वीकार करते हैं। कुछ भी रुकता नहीं है। कुछ भी ठहरता नहीं है। अगर दुःख आया है तो वह भी नहीं ठहरेगा और अगर सुख आया है तो वह भी चला जाएगा। इस समभाव से भक्त अपने मन को शान्त रखता है।

क्षमा का भाव

क्षमा करना भक्त का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। वह हर व्यक्ति के लिए करुणा रखता है और उसकी गलती पर उसे क्षमा कर देता है। क्षमा करने के बाद याद नहीं रखता। कई बार लोग क्षमा करने के बाद कितने सालों याद रखते हैं। जैसे माँ अपने बच्चों की किसी गलती पर डाँट लगाने की बजाय दफ्तर या किसी पार्टी में जाना हो तो जल्दी से बाहर चली जाती है और फिर मौका आने पर बार-बार उसे गलती याद करवाती है। इस तरह वह बच्चा उस क्षमा को महसूस नहीं कर पाता। क्षमा तो किया पर बार-बार उसका एहसास कराना कि जब तुमने गलती की थी, मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा था, यह सही निर्णय नहीं है। क्षमा करना और फिर क्षमा करके भूल जाना चाहिए।

Forgive and Forget

एक बहुत अच्छा निर्णय है। हम क्षमा करके, दूसरे पर कृपा नहीं करते। क्षमा करना मेरा अधिकार नहीं है। क्षमा करने के पीछे एक कारण होता है और वह कारण है कि क्षमा करने के साथ हम अपनी मानसिक स्थिति को सम्भाल लेते हैं और शान्त हो जाते हैं। अगर हम उस व्यक्ति से हुई गलती को ही ढोते रहेंगे तो वह सही नहीं है।

भक्त अपनी भावनात्मक सन्तुष्टि के लिए, अपने को कष्ट पहुँचाने वालों को दण्ड देने के बारे में नहीं सोचता। दूसरों के प्रति ऐसे नकारात्मक विचारों से भक्ति नष्ट हो जाती है इसलिए बुद्धिमान भक्त किसी भी परिस्थिति में निर्मम विचारों को अन्तःकरण में शरण देना अस्वीकार कर देते हैं। दुष्कर्म करने वालों को दण्ड प्रदान करने का कार्य भगवान के ऊपर छोड़ देते हैं।

क्षमा एक ऐसा भाव है जो हर व्यक्ति पाना चाहता है, पर देना नहीं चाहता। दूसरे की गलती होने पर हम जज बन जाते हैं, हमें लगता है कि इसने एक बार गलती की, दो बार गलती की, हमने तो बहुत बार माफ कर दिया, अब इसे क्षमा नहीं करना।

क्षमा करते समय हम जज बन जाते हैं और जब क्षमा चाहिए होती है तो हम अपने वकील बन जाते हैं। जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए, क्षमा करते समय हमें दूसरों के वकील बनना चाहिए और अपने लिए जज बनना चाहिए।

12.14

सन्तुष्टः(स्) सततं(यँ) योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः(र्), यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः॥12.14॥

विवेचन - भक्ति का अगला गुण है **सन्तोष का भाव।** वह भक्त हमेशा सन्तुष्ट रहता है। सन्त कबीरदास ने सन्तोष के विषय में कहा है –

गोधन, गजधन, बाजिधन और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन सब धन धूरि समान॥

सन्तोष मिलने पर अन्य किसी धन की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती है। सभी प्रकार के धन में सन्तोष ही प्रधान है।

यक्ष ने पूछा- कौन दरिद्र है? जिसके पास धन नहीं है, जिसके पास विद्या नहीं?

युधिष्ठिर जीने उत्तर दिया-

असंतुष्टः सः दरिद्र ।

सुख समृद्धि से हमें सन्तोष प्राप्त नहीं होता अपितु इसके विपरीत सन्तोष केवल अपनी कामनाओं पर अङ्कुश लगाने से मिलता है। भक्त सांसारिक पदार्थों को अधिक समय तक सुख देने के साधन के रूप नहीं देखते। भगवत्कृपा से उन्हें जो मिलता है, उसी में सन्तुष्ट रहते हैं।

भक्ति में एकीकृत होना- 'योग' का अर्थ जुड़ना है। पतञ्जलि मुनि कहते हैं-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

चित्तवृत्तियों का निरोध योग है। भक्त योगी होते हैं क्योंकि उनकी चेतना भगवान में लीन रहती है। यह दृढ़तापूर्वक निरन्तर बनी रहती है क्योंकि वे भगवान के साथ अटूट सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।

आत्मसंयमी

भक्त आत्म संयमी होते हैं, जिस सङ्कल्प को एक बार लेते हैं, उसे संयम से निभाते हैं। वे प्राप्त करके ही प्रसन्न होते हैं। भगवान की प्रेममयी भक्ति में अपना मन अनुरक्त करते हैं। इस प्रकार से वे संसार से विरक्त हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे अपने मन और इन्द्रियों पर विजय पा लेते हैं।

दृढ़सङ्कल्प

भक्त का एक विशेष लक्षण होता है कि वह जिस सङ्कल्प को धारण करता है, फिर उसका अन्य विकल्प नहीं रखता। न ही कोई विकल्प उसे मोहित करता है। सप्तऋषि माँ भवानी के पास आए और उनसे कहने लगे कि शिव में तुम्हें ऐसा क्या मिला? जो तुमने शिव को अपने पति के रूप में स्वीकार किया। जितनी तपस्या तुमने की है, इससे तो तुम्हें विष्णु भी मिल जाते, जो तुम्हारे पति बनने योग्य हैं। कैलाश पर्वत पर अकेले रहने वाला तपस्वी और बर्फ के घर में रहने वाला, तुम्हें कैसे अपने लिए स्वीकार्य हुआ? पार्वती मैया ने कहा कि मुझे नारद मुनि जी ने कहा कि आपको शिव को वर के रूप में प्राप्त करना चाहिए। आप पहले आते तो मैं आपका कहना मान लेती। अब तो हजारों वर्षों की तपस्या के बाद मुझे शिव वर के रूप में प्राप्त हुए हैं, स्वयं शिव भी कहेंगे तो भी मैं अपना निर्णय नहीं बदलूगीं। यह भवानी जी का दृढ़ सङ्कल्प था।

दृढ़ता का गुण स्थिर बुद्धि से प्राप्त होता है। भक्ति से बुद्धि इतनी दृढ़ हो जाती है कि यदि पूरा संसार अन्यत्र मार्ग पर जाने का परामर्श दे, तब भी भक्त अपने सङ्कल्प से पीछे नहीं हटते।

समर्पण

हम स्वयं को मन और बुद्धि से परमात्मा को समर्पित करते हैं, तब हमारी आत्मा भी स्वाभाविक रूप से भगवान की सेवा के लिए समर्पित हो जाती हैं।

रामायण में सुतीक्षण मुनि की एक बहुत सुन्दर कथा मिलती है-

सुतीक्षण मुनि को चिन्ता सताने लगी कि उनको न तो तप, न जप करने की विधि आती है! उनको रामजी कैसे मिलेंगे? रामजी के दर्शन करने के लिए आतुर सुतीक्षण मुनि अपने आश्रम में ध्यान पर बैठ गए। रामजी उनके आश्रम में आए और खड़े रहे। सुतीक्षण मुनि अपने ध्यान में बैठे थे। श्रीराम ने उनके ध्यान में प्रवेश करके अपनी प्रतिमा देखी तो उन्होंने मुनि के नेत्र द्वार से वह छवि हटा दी। सुतीक्षण मुनि घबराकर उठ गए और आँखें खोली तो देखा, श्रीराम उनके सामने खड़े थे। मुनि को आश्चर्य हुआ और रोने लग गए। समर्पित भाव से प्रसन्न होकर भगवान स्वयं अपने भक्त को दर्शन देते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिन भक्तों में भगवान की भक्ति में तल्लीनता वाले गुण प्रदर्शित होते हैं, वे उन्हें अत्यन्त प्रिय लगते हैं।

12.15

यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः|
हर्षामर्षभयोद्वेगैः(र्), मुक्तो यः(स्) स च मे प्रियः||15||

जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता और जो स्वयं भी किसी प्राणी से उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय और उद्वेग (हलचल) से रहित है, वह मुझे प्रिय है।

विवेचन- उद्विग्न न करना और न होना।

जो व्यक्ति किसी के भी व्यथित होने का न कारण बनता है और न स्वयं व्यथित होता है वह भक्त है।

neither gets irritated nor irritates anybody.

भक्त न किसी को तङ्ग करता है, न कोई उसे तङ्ग करता है। अगर कोई परेशानी आती है तो उसका कारण होता है कोई पिछला प्रारब्ध जो आपके सामने आता है। वह भक्त जिसकी आत्मा प्राकृतिक रूप से शुद्ध और अदूषित है। समस्या यह है कि वर्तमान में यह शुद्धि अशुद्ध मन से आच्छादित है। एक बार जब यह अशुद्धता दूर हो जाती है तत्पश्चात आत्मा के श्रेष्ठ गुण स्वाभाविक रूप से प्रकाशित हो जाते हैं।

वर्तमान समय में लोग छोटी-छोटी बातों से परेशान होना शुरू हो गए हैं। अगर किसी की गाड़ी को स्क्रैच लग गया तो आपस में ऐसे लड़ना शुरू हो जाते हैं कि जैसे बहुत बड़ी हानि हो गई। सहनशीलता की क्षमता कम हो गई है। सच्चा भक्त हमेशा सहनशीलता रखता है ।

भक्ति हृदय को पिघला कर उसे कोमल बना देती है इसलिए भक्त स्वाभाविक रूप से सभी के साथ सद्व्यवहार करते हैं। इसके साथ-साथ वे सबके भीतर भगवान को विद्यमान देखते हैं और सबको भगवान के अणु अंश के रूप में देखते हैं इसलिए वह कभी किसी को कष्ट पहुँचाने की नहीं सोचते। उनके अन्दर स्वाभाविक रूप से ही सहिष्णुता आती है।

यद्यपि भक्त किसी को कष्ट नहीं देते किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि दूसरे उन्हें कष्ट पहुँचाने का प्रयास नहीं करते। सन्तों ने सदैव अपने को कष्ट देने वालों के प्रति, दयालुता का भाव ही दर्शाया।

समभाव

भक्त जानते हैं कि सुख और दुःख दोनों जीवन के उतार-चढ़ाव हैं, जैसे ग्रीष्म और सर्द ऋतु का आना-जाना। भक्त कभी इस बात का वर्णन नहीं करते कि बहुत सर्दी है या बहुत ज्यादा गर्मी है। किसी प्रकार की शिकायत या नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाते। जरा सी बिजली चली जाए तो लोग सरकार को कोसने लगते हैं। सरकार ने ये कर दिया, सरकार ने वो कर दिया। इस तरह की बातें करना शुरू कर देते हैं, सरकार को दोष देना शुरू कर देते हैं, सहनशीलता नहीं रखते, लेकिन भक्ति में सहनशीलता होती है। वे अटूट सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ सुख-दुःख दोनों को भगवान की कृपा के रूप में देखते हैं और सभी परिस्थितियों का उपयोग अपनी भक्ति बढ़ाने के लिए करते हैं।

निर्भय

भक्त हमेशा भय से मुक्त होते हैं। भय और चिन्ता का कारण आसक्ति है। इससे हमारे भीतर भौतिक पदार्थों के भोग की इच्छा उत्पन्न होती है और इनके छिन जाने की चिन्ता हमें भयभीत करती है। जिस क्षण हमारे भीतर भौतिक पदार्थों के प्रति विरक्ति उत्पन्न होती है, उसी क्षण हम भय मुक्त हो जाते हैं। भक्त केवल आसक्ति रहित होते हैं इसलिए उन्हें भय और चिन्ता का अनुभव नहीं होता।

हमारे साथ है रघुनाथ तो किस बात की चिन्ता।।

यह विश्वास रखते हैं-

तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार उदासी मन काहे को धरे।

12.16

अनपेक्षः(श्) शुचिर्दक्ष, उदासीनो गतव्यथः|
सर्वारम्भपरित्यागी, यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः||16||

जो अपेक्षा (आवश्यकता) से रहित, (बाहर-भीतर से) पवित्र, चतुर, उदासीन, व्यथा से रहित (औरः सभी आरम्भों का अर्थात् नये-नये कर्मों के आरम्भ का सर्वथा त्यागी है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

विवेचन-

अनपेक्ष- भक्त किसी भी तरह की अपेक्षा नहीं रखते, हर तरह की अपेक्षा को छोड़ चुके होते हैं। कहीं ऐसा न हो जाए, वैसा न हो जाए, यह धारणा सर्वदा दुःख देती है। इस धारणा को छोड़कर भक्त हमेशा भक्ति में लीन रहते हैं, उनको किसी भी तरह की आशाएँ तङ्ग नहीं करती। व्यक्ति को अपनी आशााएँ ही सताती हैं। वह जिस व्यक्ति से ज्यादा आशाा रखता है, उसी से ही उसे दुःख प्राप्त होता है। पति से आशा, पत्नी से आशा, पुत्र से आशा, ऐसी आशााएँ ही मनुष्य को परेशान करती हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी कहते हैं-

Other's duty is not my right

किसी दूसरे के कार्य की जिम्मेदारी मेरी नहीं है इसलिए किसी से आशा रखने से हमें ही उसके कर्म का बोझ उठाना पड़ता है। भक्त भगवान के दिव्य प्रेम से समृद्ध होते हैं और उससे सम्पन्न होने को ही वे परम निधि मानते हैं। वे भगवान की प्रेममयी सेवा को अति प्राथमिकता देते हैं, इसलिए संसार के प्रति उदासीन होते हैं व अपेक्षा नही रखते।

शुद्धता

भक्त का मन निरन्तर परम शुद्धता से भगवान में तल्लीन रहता है। इस मनःस्थिति में वे स्वभाविक रूप से बाह्य शरीर और आस-पास के वातावरण को उसी प्रकार से शुद्ध रखना चाहते हैं, अतः वे बाह्य रूप से भी शुद्ध रहते हैं। प्रतिदिन स्नान करना, भोजन से पहले अपने हाथ साफ करना, हमेशा स्वच्छ रहना, यह भक्त की विशेषता है। सैनिटाइजर इस्तेमाल करके आजकल हम यह समझते हैं कि हमने जीवाणु मार दिए पर क्या वे जीवाणु हमारे मुँह में नहीं चले जाते? हमेशा अपने हाथों को जल से धोकर ही अपना भोजन करना चाहिए। यह एक नियम होना चाहिए, शुद्धता का नियम जो कि बहुत आवश्यक है।

सावधानी व सतर्कता

भक्त सभी कार्यों को भगवान की सेवा के अवसर के रूप में देखते हैं इसलिए वे ध्यानपूर्वक और अति सावधानी से अपने कार्य करते हैं। बचपन में जब हम गीता भवन जाते थे तो वहाँ हर द्वार पर सावधान लिखा होता था। तब तो हम छोटे थे, नहीं समझ पाए परन्तु बड़े होकर जब हमने यह किसी ब्रह्मचारी से पूछा तो उन्होंने कहा कि सदैव सावधान रहना साधक के लिए आवश्यक है।

सावधानी हटी, दुर्घटना घटी।

इसलिए सावधान होना आवश्यक है। सतर्कता के लिए हर द्वार पर ऐसा लिखा रहता है।

कार्य कुशल

भक्ति स्वाभाविक रूप से भक्त को कार्य कुशल बनाती है। एक बार एक सराय में आकर तीन व्यापारी ठहरे। रात को भोजन करते वक्त दो व्यापारी अपना-अपना खाना लेकर बैठ गए और तीसरा व्यापारी जल पीकर सोने की तैयारी करने लगा। वह

दोनों समझ गए कि शायद वह घर से खाना नहीं लेकर आया इसलिए वह जल पीकर ही सोना चाहता है। भाईचारे के उद्देश्य से उन दोनों ने उसके पास जाकर खाने का आग्रह किया कि जो भी खाना लेकर आए हैं आपस में मिल बाँटकर खा लेंगे, ऐसा कहकर वे उसे अपने साथ खाने के लिए ले आए। एक व्यक्ति के पास तीन रोटी थी और दूसरे व्यक्ति के पास पाँच रोटी थी। उन दोनों ने हर रोटी के तीन टुकड़े कर तीनों में बाँट दिए। इस तरह से दो-ढाई चपाती खाकर तीनों चैन से सो गए। सुबह उठे तो तीसरा व्यापारी, जो खाना नहीं लेकर आया था, वह अपने बिस्तर पर नहीं था। जब देखा तो उसके बिस्तर पर सोने की आठ गिन्नियाँ पड़ी थीं। दोनों व्यापारियों ने सोचा कि खाने के बदले में ये गिन्नियाँ छोड़ गया है, बहुत अमीर व्यापारी होगा। दोनों ने आपस में चार-चार गिन्नी बाँटने का सोचा और बाँटने के विषय में दोनों में विवाद हो गया। जो पाँच रोटी लेकर आया था, उसे लगा कि उसे ज्यादा मिलनी चाहिए, दूसरे को, जो तीन रोटी लेकर आया था, उसे तीन गिन्नी ही मिलनी चाहिए। दोनों सराय के मालिक के पास गए। सराय के मालिक ने कहा कि मैं तो इसका निर्णय नहीं कर पाऊँगा। हम सरपञ्च के पास चलते हैं। हमारा सरपञ्च बहुत ही कुशल और दक्ष है। पच्चीस गाँवों तक भी जब किसी का मामला फँस जाता है तो लोग उसके पास फैसला करने के लिए आते हैं। सरपञ्च के पास पहुँचे तो उसने फैसला करने से मना कर दिया। उसने कहा कि तुम मेरे गाँव के नहीं हो। अगर तुमने मेरा फैसला नहीं माना तो मेरी नाक नीची हो जाएगी। दोनों ने विनती की, कि हम आपको वचन देते हैं कि हम आपका कहना मानेंगे। आपका फैसला हम दोनों को स्वीकार होगा। सरपञ्च ने कहा कि एक और सात गिन्नियाँ बाँट लो। वह दोनों आश्चर्यचकित रह गए क्योंकि एक और सात का तो उन्होंने सोचा ही नहीं था। सराय के मालिक ने सरपञ्च से पूछा कि बताइए तो सही, यह फैसला आपने किया कैसे? आखिर इस निर्णय पर आप कैसे पहुँचे कि एक व्यक्ति को एक और दूसरे को सात गिन्नियाँ मिलनी चाहिए। सरपञ्च ने कहा कि एक व्यक्ति तीन रोटी लेकर आया। एक रोटी के तीन टुकड़े हुए। इसका मतलब नौ टुकड़े और उसने उसमें से अपने लिए आठ टुकड़े खा लिये। सहयोग तो उसने केवल एक ही टुकड़े का दिया। दूसरा व्यक्ति पाँच रोटी लेकर आया, हर रोटी के तीन टुकड़े हुए। पन्द्रह टुकड़ों में से उसने केवल आठ टुकड़े खाए और सात का सहयोग दिया, इसलिए उसे सात गिन्नियाँ मिलनी चाहिए। निर्णय बहुत ही स्पष्ट था। दक्ष व्यक्ति की बुद्धि अलग तरह से चलती है। उसकी कार्य कुशलता पर प्रश्न नहीं किया जा सकता। हम आम व्यक्ति कैसे प्रधानमन्त्री, महापुरुषों, सन्तों, सबके ऊपर प्रश्न कर देते हैं, कभी यह नहीं सोचते कि उनकी बुद्धि दक्ष है और वह किसी अलग सोच से चल रही है। कार्य कुशलता एक विशेषता है, जो कि सबको मान्य होनी चाहिए।

उदासीन व निरपेक्ष

उदासीन का मतलब है भक्त को हमेशा प्रसन्नचित रहना चाहिए। भगवान हमेशा प्रसन्न चित्त ही देखना चाहते हैं।

जज हमेशा एक स्टेप ऊपर बैठते हैं इसका कारण होता है कि वह दोनों पक्षों से थोड़ा ऊपर इसलिए बैठते हैं कि किसी के साथ भी वह अन्याय न कर दें। दोनों पक्षों से ऊपर बैठने का मतलब कि किसी भी पक्ष के साथ पक्षपात नहीं हो सकता। इसी तरह से भक्त हर दृश्य का साक्षी तो बनता है, पर निरपेक्ष रहता है। पक्षपात नहीं करता। मन में यह विश्वास रखकर कि भगवान सदैव शरणागति के अनुसार उनकी रक्षा करते हैं, भक्त चिन्ता मुक्त रहते हैं।

अव्यथित

भक्त का मन कभी व्यथित नहीं होता। मैं कभी भी किसी बात से विचलित नहीं होता। गान्धारी ने श्रीकृष्ण को श्राप दे दिया, श्रीकृष्ण उस श्राप से विचलित नहीं हुए।

भक्त अपनी इच्छा भगवान को समर्पित कर देते हैं, अतः वे केवल अथक प्रयासों के साथ अपने समस्त कार्यों को सम्पन्न करते हैं और उनका फल भगवान की इच्छा पर छोड़ देते हैं।

आशावादी व सर्वारम्भ त्यागी होना,
भक्ति मार्ग का अन्तिम चरण है।

माननीय स्वामी जी का एक प्रसङ्ग है। एक बार चलते-चलते बहुत तेज आँधी आई तो उन्होंने अपनी दिशा बदल कर दूसरी तरफ चलना शुरू कर दिया। किसी ने पूछा कि आपको तो दूसरी तरफ जाना था तो स्वामी जी ने कहा- कोई बात नहीं, हवा ने कहा कि इधर चलो, तो मैं इधर चल पड़ा। आशावादी होना भक्त की एक विशेषता है

किसी बात पर बिना मतलब निराश न होना व लौकिक सुखों से हर्षित तथा संसार के दुःखों से निराश न होना। समान रूप से भगवान के भक्त भगवान के दिव्य प्रेम और आनन्द से तृप्त रहते हैं इसलिए भक्त प्रसन्नता और निराशा से ऊपर उठ जाते हैं।

लाभ में हर्षित और हानि में शोक न करनाः ऐसे भक्त न तो सांसारिक सुखों के लिए लालायित होते हैं और न ही अप्रिय परिस्थितियों में शोक करते हैं।

निःस्वार्थ:

भक्त की सेवा करने की मनोभावना उन्हें तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठाती है।

12.17

यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति|
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्यः(स्) स मे प्रियः||17||

जो न (कभी) हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है (और) जो शुभ-अशुभ कर्मों से ऊँचा उठा हुआ (राग-द्वेष रहित) है, वह भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

विवेचन- शोक न करना।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो हमेशा निराश रहते हैं, शोक में ही रहते हैं! कोई भी उन्हें मिलना पसन्द नहीं करता, क्योंकि सबको लगता है कि जब भी इनसे बात करो, यह किसी न किसी बात से निराश ही रहते हैं और रोते ही रहते हैं। भक्त न तो सांसारिक सुखों के लिए लालायित होते हैं और न ही अप्रिय परिस्थितियों में शोक करते है।

शुभ और अशुभ कर्मों का त्याग

श्रीभगवान कहते हैं, पुण्य और पाप कर्म दोनों का ही त्याग कर देना चाहिए। जैसे, काँटा लगने से काँटे को दूसरे काँटे से निकाल दिया जाता है और फिर दोनों को ही फेंक दिया जाए। ऐसे ही पाप को पुण्य से खत्म किया जाता है, सम्भाल कर रखना आवश्यक नहीं है।

12.18

समः(श्) शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः|
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः(स्) सङ्गविवर्जितः||18||

(जो) शत्रु और मित्र में तथा मान-अपमान में सम है (और) शीत-उष्ण (शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता) तथा सुख-दुःख (मन बुद्धि की अनुकूलता-प्रतिकूलता) में सम है एवं आसक्ति रहित है (और) जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला, मननशील, जिस किसी प्रकार से भी (शरीर का निर्वाह होने न होने में) संतुष्ट, रहने के स्थान तथा शरीर में ममता आसक्ति से रहित (और) स्थिर बुद्धिवाला है, (वह) भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है। (12.18-12.19)

विवेचन- जो मुझे शत्रु मानता है, जरूरी नहीं कि मैं भी उसको शत्रु मान लूँ। भक्त वह है, जिसके दरवाजे प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुले हैं। उसके लिए कोई भी मित्र या शत्रु नहीं है। कोई नहीं आना चाहता तो वह उसकी इच्छा है, लेकिन भक्त के पास हर एक का स्वागत है।

जो मित्रों और शत्रुओं के लिए एक समान हैं, मान और अपमान, शीत और ग्रीष्म, सुख तथा दुख, में समभाव से रहते हैं, वे मुझे अति प्रिय हैं।

चाहे करे निन्दा कोई
चाहे कोई गुण गान करे,
फूलों से सतकार करे
काँटों की चिन्ता न धरे
मान और अपमान ही दोनो
जिसे के लिये समान रे
वो सच्चा इन्सान रे,
वो सच्चा इन्सान रे।।

जरा सम्मान मिला तो फूल गए और जरा सा अपमान हुआ तो व्यथित हो गये, ऐसा मन नहीं होना चाहिए। श्रीभगवान कहते है कि हर तरह की परिस्थिति में सम रहना चाहिए।

12.19

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी, सन्तुष्टो येन केनचित्|
अनिकेतः(स्) स्थिरमतिः(र्), भक्तिमान्मे प्रियो नरः||19||

विवेचन - प्रशंसा और निन्दा एक समान।

श्रीभगवान कहते हैं कि साधारण व्यक्ति के लिए अन्य लोगों की प्रशंसा और निन्दा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है किन्तु भक्त आन्तरिक रूप से अपने सिद्धान्तों, जिन्हें वे महत्त्व देते हैं, उन्हीं से प्रेरित होते हैं इसलिए अन्य लोगों द्वारा की जाने वाली प्रशंसा और निन्दा से उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मौन चिन्तन

सामान्य रूप से सांसारिक लोगों का मन लौकिक विषयों पर वार्तालाप करने में अत्यन्त आनन्द प्राप्त करता है लेकिन सन्तों का मन शुद्ध होता है इसलिए उन्हें सांसारिक विषय आकर्षित नहीं करते। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे वार्तालाप नहीं करते, पर ऐसे विषयों की ओर आकर्षित नही होते।

सन्तुष्ट रहना

शरीर की देखभाल के लिए भक्त अति न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ जीवन निर्वाह करते हैं।

12.20

ये तु धर्म्यामृतमिदं(यँ), यथोक्तं(म्) पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा, भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥12.20॥

परन्तु जो (मुझ में) श्रद्धा रखने वाले (और) मेरे परायण हुए भक्त इस धर्ममय अमृत का जैसा कहा कहा है, (वैसा ही) भली भांति सेवन करते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

विवेचन- श्रीकृष्ण अब अर्जुन के प्रश्न की सारगर्भित व्याख्या करते हुए, इस अध्याय का समापन करते हैं। वे भक्त जो परमात्मा को अपना परम लक्ष्य मानते हैं और पूर्ण श्रद्धा और पिछले श्लोकों में उल्लिखित गुणों से युक्त होकर, अपनी भक्ति को विकसित करते हैं, ऐसे भक्त भगवान को अति प्रिय हैं।

हनुमान जी की एक कथा आती है। रावण का वध करके जब श्रीराम वापस आए तो उन्होंने सबको विदा करना शुरू किया।

अङ्गद को विदा किया!, सुग्रीव को विदा किया, विभीषण को विदा किया, निषाद राज को विदा किया, हनुमान जी ने कहा, मैं तो यहीं पर ही रहूँगा। हनुमान जी श्रीराम के साथ महल में ही रहने लगे। रोज सुबह उठकर जानकी जी स्नान के बाद सिन्दूर लगातीं। उनको देखकर एक दिन हनुमान जी ने पूछा- माता! आप यह सिन्दूर क्यों लगाती हैं? माता जानकी ने कहा कि इससे श्री रामजी को अच्छा लगता है। हनुमान जी ने अपने सारे शरीर पर सिन्दूर मल लिया। वे सीता जी के पास पहुँचे। श्रीसीता जी ने पूछा - यह क्या किया तुमने? हनुमान जी ने कहा मैंने भी अपने शरीर पर सिन्दूर लगाया है, पर वह तो यहाँ तक आते-आते झड़ गया। सीता माता ने कहा कि पहले घी लगाते हैं, फिर सिन्दूर लगाते हैं। हनुमान जी महल के भण्डार में दोबारा गये और वहाँ से घी लिया और अपने ऊपर उड़ेल लिया और इस तरह सिन्दूर टिक गया। तब से हनुमान जी के शरीर को सिन्दूर लगाने की परम्परा है।

जिसके अन्दर यह श्रद्धा होती है कि मेरे भगवान को जो अच्छा लगेगा मैं वैसा ही करूँगा!, मेरा ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

हरि शरणं! हरि शरणं! हरि शरणं!

: : प्रश्नोत्तर : :

प्रश्नकर्ता- शरदेन्दु मिश्र भैया
प्रश्न- दूसरे की त्रुटि से हानि हो तो क्या करें?
उत्तर- दूसरे की त्रुटि से स्वयं को हानि होती हो, या कष्ट हो तो उचित उपाय करना चाहिए, मन में क्रोध नहीं करना चाहिए। सामान्य त्रुटि है तो सहन करके क्षमा कर देना चाहिए। अधिक कष्टकारी है, तो यथोचित उपाय करना चाहिए। छात्र ने त्रुटि की तो अध्यापक को क्रोध नहीं करना चाहिए, त्रुटि निराकरण का उपाय करना चाहिए। भगवान ने हमें उसे शिक्षा देने हेतु नियुक्त किया है। दूसरे का कर्त्तव्य हमारा अधिकार नहीं है।

प्रश्नकर्ता- डॉ मधु चौधरी दीदी
प्रश्न- क्या साधना के लिए गुरु आवश्यक है?
उत्तर- गुरु से हमारी साधना को गति मिलती है। किसी विषय की सामान्य शिक्षा भी स्वयं सीखने की बजाय हम गुरु से सीखते हैं तो शीघ्रता से सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। अध्यात्म का ज्ञान तो सामान्य ज्ञान की तुलना में, अधिक गूढ़ है। हमारे जन्मों और कर्मों के विषय में गुरु हमसे अधिक जानते हैं। पहले गुरु के विषय में जानकारी लेनी चाहिए। केवल भीड़-तन्त्र का हिस्सा नहीं बनना चाहिए। गुरु तो नहीं कहते कि आओ मेरे शिष्य बनो। अर्जुन ने श्रीभगवान से कहा कि मुझे अपना शिष्य बना लें, तब भगवान ने उन्हें बनाया।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहितन्मे,
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥2:7॥

गुरु की खोज करके गुरु की शरण लेनी चाहिए। गुरु हमारा समाधान करते हैं कि क्या जप करना है? क्या साधना करनी है? यह गुरुजी बताते हैं, कि भक्ति कैसे करनी है।

प्रश्नकर्ता- रवीन्द्र ठोठा भैया
प्रश्न- गीता कक्षा में श्लोक के साथ संक्षिप्त अर्थ बताए जाएँ।
उत्तर- हम शीघ्रता से सब पा लेना चाहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता को समझना या अर्थ जान लेना सरल या शीघ्रता का कार्य नहीं है।

एक साधै सब सधै,
सब सधै सब जाये।

श्रीमद्भगवद्गीता का अर्थ कहना भी आसान नहीं है और समझना भी आसान नहीं है। एक, दो महीने या एक, दो साल में यह सम्भव नहीं है। एक ही जीवन नहीं, अपितु कई-कई जन्म लग जाते हैं। गीता परिवार की नियमित कक्षा में उच्चारण सिखाया जाता है। लगभग एक वर्ष तक चालीस मिनट की कक्षा में उच्चारण ही सीख सकते हैं। इस कक्षा में यदि थोड़ा अर्थ बताया जावे, तो उससे साधक के मन में अनेक प्रश्न उठेंगे। प्रशिक्षकों को केवल उच्चारण सिखाने का ही प्रशिक्षण दिया जाता है। अर्थ बताने का प्रशिक्षण उन्हें नहीं दिया जाता। अर्थ बताना उच्चारण बताने जितना सरल नहीं होता, उसके लिए स्वाध्याय और चिन्तन करना पड़ता है इसलिए उस कक्षा में अर्थ बताना निषेध है। अर्थ जानने हेतु अनेक पुस्तकें और व्याख्याएँ उपलब्ध हैं। शनिवार व रविवार को होने वाले विवेचन सत्र भी केवल प्रारम्भिक विज्ञापन ही हैं, ताकि श्रीमद्भगवद्गीता में मन लग जाये। श्रीमद्भगवद्गीता का वास्तविक अर्थ तो किसी श्रेष्ठ ज्ञानी महात्मा और गुरू से ही पाया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता- अपर्णा चौहान दीदी
प्रश्न- क्या भगवान से माँगना चाहिए?
उत्तर- कभी-कभी भगवान से माँग लेना चाहिए। हमेशा माँगते रहना अच्छा नहीं है शिशु कभी कभार माता से माँगता है, तौ माता सहर्ष उसकी इच्छापूर्ति कर देती है। सदैव माँगते रहने या आवश्यकता से अधिक माँगने पर, माता उस बालक की उपेक्षा करती है। हम भी श्रीभगवान जी के शिशु हैं। आवश्यकता होने पर कभी-कभी भगवान से कुछ माँग सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- मञ्जू दीदी दीदी
प्रश्न- पूजा-पाठ किस समय करना चाहिए?
उत्तर- ब्रह्म मुहूर्त में उठकर पूजा करना उत्तम है। उसके पश्चात् जैसे-जैसे विलम्ब होता है, आराधना का स्तर कम हो जाता है।

प्रश्नकर्ता- प्रतीक्षा सिंहा दीदी
प्रश्न- क्या पुण्य करने से पाप नष्ट हो जाते हैं?
उत्तर- सभी पाप, पुण्यों से नहीं कटते। दो प्रकार के प्रारब्ध होते हैं, मध्यम प्रारब्ध और तीव्र प्रारब्ध। मध्यम प्रारब्ध का पुण्य कर्मों से शमन हो जाता है। यथा - दान, दक्षिणा, गङ्गा स्नान, जप, तप आदि से इन पापों का प्रायश्चित और शमन होता है।
तीव्र प्रारब्ध का फल भोगना ही पड़ता है। बड़े बड़े साधु सन्त, महात्मा भी प्रारब्ध का फल भोगते हैं।

प्रश्नकर्ता- अङ्कित सिङ्गल भैया
प्रश्न- अच्छा कर्म करने में बड़ों की सहमति न हो तो कैसे करें?
उत्तर- आपकी दृष्टि में जो अच्छा कर्म है, उसे करने से यदि घर के बड़े रोकते हैं, तो उन्हें कार्य की विशेषता बताकर सहमति स्थापित करनी चाहिए। गुरु के माध्यम से परिवार में सहमति की जा सकती है। ऐसी पारिवारिक समस्याएँ गुरु की उपस्थिति होने से सुलझ जाती हैं इसलिए गुरु का होना आवश्यक है। आप पुत्र को गुरुकुल में भेजना चाहते हैं, आपकी माताजी असहमत हैं। पुत्र पर केवल आपका अधिकार नहीं है, बच्चे की दादी का भी उस पर अधिकार है। आप अकेले निर्णय लेते हैं, तो यह अनधिकार चेष्टा है । ऐसे विषयों में सबसे अधिक सहयोग मिलता है, सद्गुरु से। गुरु न होने से ऐसी समस्याएँ आती हैं। गुरु द्वारा ऐसी पारिवारिक समस्याओं का निदान हो जाता है।

प्रश्नकर्ता- सुमन रस्तोगी दीदी
प्रश्न- बच्चे रोकने पर भी न माने तो क्या करें?
उत्तर- माता पिता बच्चों के पालक हैं, उनके स्वामी नहीं हैं। छोटी आयु के बच्चों को समझाया जा सकता है। सही गलत का अन्तर बताया जा सकता है। बड़ी आयु वालों को केवल सलाह दी जा सकती है। उन्हें हम अपनी इच्छानुसार नहीं चला सकते। हमने भी अपने माता-पिता की कुछ बातें मानी, कुछ नहीं मानी। सलाह भी माँगने पर ही दी जा सकती है। हम अपनी सहमति या असहमति प्रकट कर सकते हैं। वे हमारी सहमति या असहमति का पालन करें या न करें, इसकी बाध्यता नहीं की जा सकती। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बाध्य नहीं किया, अपितु सब कुछ समझाने के बाद कहा, जैसे तुम्हारी इच्छा वैसे करो।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥18:63।।

हमें अपने अधिकारों को असीमित नहीं मानना चाहिए। समझाने से नहीं समझते तो ठोकर खाकर समझ जाएँगे।

प्रश्नकर्ता- इन्दुजा त्यागी
प्रश्न- सर्वारम्भ परित्यागी क्या है?
उत्तर-

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥12:16॥

भक्ति की पूर्णावस्था सर्वारम्भ त्यागी होना है। केवल कर्त्तव्य कर्म का निर्वहन करते रहना है। नए पुण्यकर्म या पापकर्म से विमुख होकर अपने नियत कर्त्तव्य कर्म का पालन करते रहना। अपनी इच्छा से कोई नया कर्म नहीं करना। कर्त्तव्य पालन के पश्चात मिला समय भगवद्भक्ति में लगाना। आरम्भिक साधकों के लिए ऐसा नहीं है। यह भक्ति में पूर्णता प्राप्त होने की स्थिति है। हम जैसे सामान्य साधकों के लिए यह नहीं है। योगीजन सिद्धपुरुष स्वामी जी जैसों के लिए सर्वारम्भ परित्यागी का लक्षण कहा गया है।

प्रश्नकर्ता- अनिल अग्रवाल भैया
प्रश्न- पापात्मा से क्या व्यवहार करें?
उत्तर- पतञ्जलि योग दर्शन में कहा गया है, दुःखियों के प्रति करुणा करो। पुण्यात्माओं के प्रति मुदिता करो कि वे बड़े अच्छे लोग हैं। ऐसी प्रसन्नता प्रकट करो। पापात्माओं के प्रति उपेक्षा करो। उनको टाल दो, उनसे मत मिलो। श्रीमद्भगवद्गीता में उपेक्षा करने को नहीं कहा है। पापात्माओं के प्रति भी करुणा कही है। उनके प्रति भी मङ्गलमय कामना करनी है। श्रीभगवान जी से प्रार्थना करनी चाहिए कि उनके पाप कट जाएं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'भक्तियोग' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||